नियमसार, कलश तो अपने माया तक आ गया है, परन्तु इस श्लोक में समझने का बहुत है।

जिसमें (जिस गड्ढे में) छिपे हुए... क्रोध, मान, माया, लोभ, हास्यरूपी भयंकर सर्प। आहाहा! वे **देखे नहीं जा सकते...** किसे ? जिसे **मिथ्यात्वरूपी घोर अन्धकारवाला...** गहरे-गहरे जिसे मिथ्यात्व का अंश है, इसलिए वह माया के खड्डे में पड़ा है; इसलिए उसे सूक्ष्म दोष क्या है और कहाँ मेरा दोष आता है, उसे पकड़ नहीं सकता। समझ में आया ? यह श्लोक भी आता है। 'मायामां मिथ्यात्व।' यहाँ तो मिथ्यात्व में माया कहते हैं। वह तो माया में मिथ्यात्व। अन्दर में मिथ्या अन्धकार, वास्तविक स्वरूप का ज्ञान और भान

नहीं होने से मिथ्या अन्धकार से माया के खड्डे में कितने दोष, कैसे बारीक-सूक्ष्म है ? किस दोष में मैं अटकता हूँ ? और मुझे क्या दोष है ? वह जान नहीं सकता। आहाहा ! है न ? यह कल कहा था। डॉक्टर थे।... आहाहा !

भगवान अनन्त गुण का सागर, ऐसा होने पर भी, उससे विपरीत किसी भी अभिप्राय में मिथ्यात्व अन्दर हो, तो मिथ्यात्वरूपी अन्धकार से मायारूपी खड्डे में कितने दोष हैं, कपट में कहाँ-कहाँ दोष है ? यह मिथ्या अन्धकार से जान नहीं सकता। कहो, समझ में आया ? आहाहा ! यह श्लोक आता है 'मायामां मिथ्यात्व' बहुत पढ़े थे, उसमें आता था।

मुमुक्षु : सज्झायमाला में।

पूज्य गुरुदेवश्री : सज्झायमाला में आता है।

मुमुक्षु : मायामां मिथ्यात्व - यह आता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, सज्झायमाला में आता है।

श्वेताम्बर की सज्झायमाला है न, उसमें यह आता है। वह पढ़ी है न ! चारों पढ़ी है। एक-एक सज्झायमाला में २५० सज्झाय है। दुकान पर चारों पढ़ी है (संवत्) १९६५-६६ के वर्ष में। 'मायामां मिथ्यात्व। साचामां समकित वसे अने मायामां मिथ्यात्व।'—ऐसा उसमें आता है। सत्य वस्तु हो, वहाँ आगे... आहाहा ! सत्य में समकित है और मिथ्या में माया है और माया के गहरे खड्डे में पड़े हुए को, मुझे क्या-क्या दोष है, उन्हें वह मिथ्या अन्धकार में देख नहीं सकता। ओहोहो ! कहा न ?

घोर अन्धकारवाला मायारूपी महान गड्ढा... मिथ्यात्वरूपी घोर अन्धकार। अन्धकार मिथ्यात्व को कहा और मायारूपी खड्डा। आहाहा ! वापस महान खड्डा। **उससे डरते रहना योग्य है।** आहाहा ! अन्दर में सूक्ष्म थोड़ा अभिमान हो जाए और अभिमान में मिथ्यात्व आ जाए, वह ध्यान रखना चाहिए, ऐसा कहते हैं। कुछ जानपना किया, कुछ आया—कुछ पुस्तक लिखना आया, इसमें क्या विशेष भला हुआ ? यह क्या नयी चीज़ है ? आहाहा ! उसका गहराई में इसका अभिमान आवे और बाहर प्रसिद्धि का भाव अन्दर में आवे (कि) किसी प्रकार मुझे पहिचाने, ऐसा मिथ्यात्व अन्धकार और माया

का गड्ढा गहरा है। आहाहा! बहुत सरस बात है। तब सज्झायमाला में पढ़ी थी। 'सांचा में समकित बसे अने मायामां मिथ्यात्व।' ऐसा आता है। अब आज यह बाद का श्लोक है।

वनचर-भयाद्धावन् दैवाल्लताकुल-वालधिः,
किल जडतया लोलो वालव्रजेऽविचलं स्थितः।
बत स चमरस्तेन प्राणै-रपि प्रवियोजितः,
परिणततृषां प्रायेणैवम्विधा हि विपत्तयः।।

[श्लोकार्थः] वनचर के भय से.... वनचर अर्थात् मानस और या जंगल के जानवर बाघ, सिंह या भील आदि। उनके **भय से भागती हुई सुरा गाय की पूँछ...** आहाहा! चमरी गाय की पूंछ... आहाहा! चमरी गाय की पूँछ को मन्दिर में रखते हैं। मन्दिर में रखते हैं। श्वेताम्बर में मन्दिर में चमरी गाय के बड़े चँवर होते हैं। आहाहा! वह चमरी गाय की पूँछ है। **भय से भागती हुई...** आहाहा! **दैवयोग से...** कहते हैं, भागती थी भील और सिंह के भय से। उसमें **दैवयोग से...** आहाहा! **बेल में उलझ जाने पर...** बेल में उसकी पूँछ के बाल उलझ गये। आहाहा! बेल, बेल। दौड़ते-दौड़ते पीछे। सिंह और बाघ या भील। दौड़ती-दौड़ती कहीं ऐसे जाल में उसके बाल उलझ गये। बाल बहुत उत्कृष्ट होते हैं। आहाहा!

दैवयोग से बेल में उलझ जाने पर जड़ता के कारण... वापस भान नहीं कि अब इतने बाल भले उलझे। खींचकर तोड़कर चली जाऊँ, इतने बाल टूटकर चले जाएँ परन्तु इतना भान नहीं होता। आहाहा! मेरे बाल टूट जाएँगे... मेरे बाल टूट जाएँगे। परन्तु मार डालेंगे, आहाहा! **जड़ता के कारण...** उसे भान नहीं होता। **बालों के गुच्छे के प्रति लोलुपतावाली वह गाय (अपने सुन्दर बालों को न टूटने देने के लोभ में)...** आहाहा! **वहाँ अविचलरूप से खड़ी रह गयी,...** थोड़े बाल बेल में पकड़ा गये। ऐसी बेल होती है, वनस्पति की बेल आती है न? वह बहुत पतली, वहाँ वन में बहुत सैकड़ों होती है। ऊपर चढ़ी हुई होती है और उसमें बाल कहीं उलझ गये। उस बाल में उलझे हुए को... आहाहा! **(अपने सुन्दर बालों को न टूटने देने के लोभ में)...** आहाहा! थोड़े बाल टूट जाए तो वहाँ कहाँ मर जाए ऐसा था? आहाहा! इसी प्रकार इस जगत में... कहेंगे।

वहाँ अविचलरूप से खड़ी रह गयी, और अरे रे! उस गाय को... कहा न?

लोलुपतावाली वह गाय (अपने सुन्दर बालों को न टूटने देने के लोभ में) वहाँ अविचलरूप से खड़ी रह गयी, और अरेरे!... 'बत' 'बत' शब्द आया। खेद है कि **उस गाय को वनचर द्वारा प्राण से भी विमुक्त कर दिया गया!** थोड़े बाल के लोभ के कारण खड़ी हुई को वनचर ने मार डाला। आहाहा! थोड़े बाल के अपने प्रेम के कारण कि यह बाल टूट जाएँगे, इसके खातिर प्राण गँवाये। भील, सिंह, बाघ खा गया। आहाहा! **(अर्थात् उस गाय ने बालों के लोभ में प्राण भी गँवा दिये!)...** आहाहा! अब यह तो दृष्टान्त कहा।

जिन्हें तृष्णा परिणमित हुई है... अब सिद्धान्त (कहते हैं)। **जिन्हें तृष्णा परिणमित हुई है...** आहाहा! तृष्णा किसी भी चीज़ की। वह तृष्णा मान की, पूजा की, पुजाने की, स्त्री की, परिवार की, किसी भी जगह उसकी तृष्णा अटक गयी है। आहाहा! **जिन्हें तृष्णा परिणमित हुई है...** लोभ-लोभ। यह लोभ है न? लोभ परिणमित हो गया है। कहीं... कहीं... कहीं... अटक गया है। आहाहा!

मुमुक्षु : बनिया का मूल धर्म है लोभ।

पूज्य गुरुदेवश्री : बनिया का क्या? लोभिया बनिया कहलाता है ऐसा? यह तो अभी इससे आगे धर्म के नाम से भी गहरे-गहरे अपनी इज्जत की तृष्णा, नाम रखने की, कोई मुझे बाहर में पहिचाने... आहाहा! ऐसी तृष्णा का गड्ढा अन्दर पड़ा है। वहाँ पकड़ा गया है, कहते हैं। आहाहा! कठिन बात है। कुछ भी अपने स्वार्थ के अन्दर में किसी भी जगह सूक्ष्म या स्थूल अटकने के साधन में वहाँ अटक जाता है। आहा! लोभी तृष्णापरिणत, जो तृष्णापरिणत... आहाहा! ममता से परिणत, वह कोई भी स्थूल और सूक्ष्म कषाय में वहाँ पकड़ा जाता है और वहाँ से आत्मा के प्राण नाश करता है। आहाहा!

तृष्णा परिणमित हुई है, उन्हें प्रायः ऐसी ही विपत्तियाँ आती हैं। प्रायः क्यों कहा? सबको ऐसा नहीं होता, ऐसा। किसी को दूसरा दुःख होता है। किसी को कोई हो... आहाहा! कहीं दूसरा लाभ लेने जाए, कोई बाण मारे, किसी ने तलवार मारी। आहाहा! देखो न! अभी यहाँ हुआ नहीं? दूसरे... थे। जनता का व्यक्ति था। क्या कहलाता है वह? इन्दिरा। इन्दिरा के पक्ष का व्यक्ति था। वहाँ वह जनता का व्यक्ति ऐसा आया। ऐसा-ऐसा ऐसे करके फिर छुरी मार दी। मार डाला। आहाहा! गहरे-गहरे उसे मेरा देश... मेरा देश... आहाहा! कहाँ देश था और कहाँ घर था? आत्मा का राग नहीं, वहाँ और देश कहाँ से

आया ? आहाहा ! शुभ और अशुभराग, वह भी आत्मा की चीज़ नहीं। वह भी सूक्ष्म लोभ... आहाहा ! और यह पहले द्वेष जाता है, पश्चात् राग जाता है। लोभ है न ? दसवें में राग है। द्वेष पहले जाता है परन्तु राग, तृष्णा, लोभ की बात बहुत सूक्ष्म है। यह चैतन्य को किस ठिकाने लोभी, तृष्णा में परिणमित अटका है, यह इसे देखना नहीं आता। आहाहा ! यह कहते हैं।

जिन्हें तृष्णा परिणमित हुई है... अकेला पैसा ही, ऐसा कुछ नहीं। अकेले स्त्री-पुत्र नहीं। त्यागी हुआ परन्तु उसमें तृष्णा परिणमकर कहाँ अटका है ? आहाहा ! मुझे कोई पहिचाने, मुझे आगे करे और मैं धर्मी हूँ - ऐसा कोई जाने। ऐसी गहरी तृष्णा जिसे परिणमित हुई है। आहाहा ! कठिन बात है, भाई !

मुमुक्षु : मात्र मोक्ष की अभिलाषा रहे।

पूज्य गुरुदेवश्री : मोक्ष की अभिलाषा, वह इच्छा है, तथापि वहाँ श्रीमद् ने कहा 'मात्र मोक्ष अभिलाष।' तथापि वह मोक्ष की अभिलाषा, वह इच्छा है। वह इच्छा तोड़े तो मोक्ष होता है। अभिलाषा रखे तो मोक्ष नहीं होता। तथापि श्रीमद् ने ऐसा कहा 'मात्र मोक्ष अभिलाष।' आनन्द की पूर्ण दशा के अतिरिक्त अन्दर कोई इच्छा और आशा है नहीं। आहाहा ! भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द से भरपूर, उसकी अतीन्द्रिय आनन्द की पूर्णता के अतिरिक्त जिसे कोई भावना नहीं है, उसे तृष्णा परिणमित नहीं हुई। उसे लोभ नहीं हुआ। आहाहा !

तृष्णा के बहुत प्रकार हैं। कपड़ा पहनने में भी ठीक से कैसे पहनना और लोग ठीक से कैसे देखें ? यह भी अन्दर एक तृष्णा है। आहाहा ! लोभ के बहुत प्रकार हैं। उसमें सूक्ष्म लोभ इसे कहाँ होता है, वह इसे पकड़ना कठिन पड़ता है। आहाहा ! बाथरूम करने जाते होंगे। गुलाबचन्द !

जिन्हें तृष्णा परिणमित हुई है, उन्हें प्रायः... अर्थात् क्या ? गाय को मार डाला, ऐसा कदाचित् न हो। इसलिए प्रायः कहा है परन्तु **प्रायः ऐसी ही विपत्तियाँ आती हैं।** बहुत करके ऐसी ही विपत्तियों का संग और परिचय होता है। वह दुःखी प्राणी है। लोभी प्राणी दुःखी है। कहीं का कहीं, कहीं का कहीं अटक जाता है। आहाहा !

श्लोक-१८२

और (इस ११५वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्लोक कहते हैं):—

(आर्या)

क्षमया क्रोध-कषायं मान-कषायं च मार्दवेनैव।
मायामार्जवलाभाल्लोभकषायं च शौचतो जयतु।।१८२।।

(वीरछन्द)

क्रोध कषाय क्षमा से जीतो मान कषाय मार्दव से।
माया को आर्जव से जीतो और लोभ को शुचिता से॥१८२॥

[श्लोकार्थः] क्रोधकषाय को क्षमा से, मानकषाय को मार्दव से ही, माया को आर्जव की प्राप्ति से और लोभकषाय को शौच से (-सन्तोष से) जीतो॥१८२॥

श्लोक -१८२ पर प्रवचन

और (इस ११५वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्लोक कहते हैं):—

क्षमया क्रोध-कषायं मान-कषायं च मार्दवेनैव।
मायामार्जवलाभाल्लोभकषायं च शौचतो जयतु।।१८२।।

[श्लोकार्थः] क्रोधकषाय को क्षमा से,... श्वेताम्बर में 'दशवैकालिक' में यह श्लोक आता है। थोड़ी स्थूल बात तो होती है न! सूक्ष्म में तत्त्व की पूरी... यह पूरी गाथा ही इस प्रमाण आती है। क्रोध को क्षमा से जीतना, निर्मानपने से मान को जीतना, सरलपने से कपट को जीतना, सन्तोष से लोभ को जीतना। आहाहा! भाषा तो सादी परन्तु उसके भाव पहिचानना और टालना, यह कठिन बात है, भाई! आहाहा! **क्रोधकषाय को क्षमा से, मानकषाय को मार्दव से...** निर्मान, नरमायी से मान को जीते। आहाहा!

माया को आर्जव की प्राप्ति से... सरलता और आर्जव। मान को सरलता से जीते। सरलतरूप से करे। माया छोड़ने में सरलता रखे **और लोभकषाय को शौच से (-सन्तोष से) जीतो।** लोभ को सन्तोष से जीते। सन्तोष। मेरा आनन्द मेरे आत्मा में है। मैं आनन्द हूँ। मेरे आनन्द के लिये कहीं कोई आवश्यकता नहीं है तथा यहाँ आनन्द में कोई कमी नहीं है। वह आनन्द प्राप्त करने के लिये बाह्यपदार्थ की कोई अपेक्षा नहीं है, ऐसा कहकर अन्दर में आनन्द का सन्तोष रखे, उसे लोभ नहीं होता। सन्तोष किसका? आनन्द का सन्तोष, हों! पाँच-पच्चीस करोड़ रुपये हों और फिर दो करोड़ रखकर मानों सन्तोष करते हैं। वह सन्तोष नहीं हैं। पच्चीस हजार की पूँजी हो और फिर दस हजार की। अरे! पच्चीस हजार की पूँजी हो और पाँच लाख की करे। यह तो शास्त्र में है। पाँच लाख का... प्रतिज्ञा ले, तथापि समकिती होता है, तथापि वह तीव्र तृष्णा है, उसे घटा दे। मिथ्यात्व टल गया है, वह भी अपने घर में पचास हजार की पूँजी हो और प्रतिज्ञा करे कि पाँच लाख से ऊपर मुझे नहीं चलेंगे, तो भी वह मिथ्यात्व नहीं है, वह विरुद्ध नहीं है। आहाहा! समझ में आया? यह है, शास्त्र में कथन है।

प्रतिज्ञा करनेवाला समकिती, आत्मज्ञानी कदाचित् पूँजी थोड़ी हो तो भी अधिक की प्रतिज्ञा करे, तो भी उसके प्रतिज्ञा खोटी है और समकित नहीं है, ऐसा नहीं है। आहाहा! और अज्ञानी प्रतिज्ञा पूरी सब करे, यह मेरे नहीं चलेगा... यह मेरे नहीं चलेगा... यह मेरे नहीं चलेगा... परन्तु आत्मा नहीं चलेगा, इसकी उसे खबर नहीं है। आहाहा! यह पुण्य-पाप अधिकार में आता है न? चाण्डाल का पुत्र कहे कि यह मुझे नहीं चलेगा... यह मुझे नहीं चलेगा... यह मुझे नहीं चलेगा। ऐसा जो जीव... आहाहा! वहाँ कहा है। चाण्डाल का पुत्र कहे मुझे यह चलेगा।

इसी प्रकार कितने ही शुभरागी जीव अशुभराग यह नहीं चलेगा, मुझे स्त्री नहीं चलेगी, मुझे.... परन्तु अन्दर में राग की एकताबुद्धि है, उसे तो तोड़। बाहर में यह नहीं चलेगा... यह नहीं चलेगा। समझ में आया? बाहर की सब प्रतिज्ञा ली। पाँच लाख की पूँजी हो और भले प्रतिज्ञा दस लाख की ली, तो भी अन्तर सम्यग्दर्शन और भान है, तो उस ओर की तृष्णा उसे नहीं है। मात्र इतनी तृष्णा की प्रतिज्ञा ली है। अज्ञानी... आहाहा! पूँजी थोड़ी होवे तो भी उसकी प्रतिज्ञा में इतनी ही रखे परन्तु अन्तर चैतन्य के भान बिना वह

अटक गया कि यह प्रतिज्ञा मैंने की है, वह मेरा व्रत और मेरा तप, वह मेरा प्रत्याख्यान है। ऐसा अज्ञानी... आहाहा! बहुत सूक्ष्म बातें, भाई! मार्ग सूक्ष्म! जन्म-मरणरहित होने का मार्ग... आहाहा! जन्म-मरण होंगे वह तो कहाँ जन्मकर आयेगा? मनुष्यपना तो चला जाएगा। कहाँ जाएगा? आहाहा!

मुमुक्षु : अज्ञानी को प्रतिज्ञा लेने से मन्द कषाय तो होती है न?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह मन्द कषाय होती है, वह मिथ्यात्व के कारण जोर है। आहाहा! मिथ्यात्व का वहाँ जोर है। आहाहा! यह राग मेरा है और मैंने राग को घटाया है, ऐसी मान्यता, वह मिथ्यात्व है। सूक्ष्म बात है, भगवान! ज्ञानी तो राग के अंश को भी 'मेरा' नहीं मानता। उसे घटाऊँ, वह तो अंश भी मेरी चीज़ नहीं, परन्तु मेरे चारित्रदोष को मैं घटाता हूँ। श्रद्धा समकितदशा में भी चारित्रदोष को मैं कम करता हूँ। दोष तो मानता है। कम करने की प्रतिज्ञा करता हूँ। मिथ्यादृष्टि को तो राग के ऊपर ही लक्ष्य है। आहाहा! राग का ही अन्दर लोभ और लोभी। गहरे आत्मा प्रभु भगवान, वह तो एक ओर पड़ा रहा है। और इस रमणता में राग में उसने कुछ घटाया, प्रतिज्ञा की परन्तु वह सब मिथ्यात्व है। आहाहा! है?

गाथा-११६

उक्किट्ठो जो बोहो णाणं तस्सेव अप्पणो चित्तं।
जो धरइ मुणी णिच्चं पायच्छित्तं हवे तस्स।।११६।।

उत्कृष्टो यो बोधो ज्ञानं तस्यैवात्मनश्चित्तम्।
यो धरति मुनिर्नित्यं प्रायश्चित्तं भवेत्तस्य।।११६।।

अत्र शुद्धज्ञानस्वीकारवतः प्रायश्चित्तमित्युक्तम्। उत्कृष्टो यो विशिष्टधर्मः स हि परमबोधः इत्यर्थः। बोधो ज्ञानं चित्तमित्यनर्थान्तरम्। अत एव तस्यैव परमधर्मिणो जीवस्य प्रायः प्रकर्षेण चित्तम्। यः परमसंयमी नित्यं तादृशं चित्तं धत्ते, तस्य खलु निश्चयप्रायश्चित्तं भवतीति।

उत्कृष्ट निज अवबोध अथवा ज्ञान अथवा चित्त को।
धारे मुनि जो पालता वह नित्य प्रायश्चित्त को॥११६॥

अन्वयार्थ : [तस्य एव आत्मनः] उसी (अनन्त धर्मवाले) आत्मा का [यः] जो [उत्कृष्टः बोधः] उत्कृष्ट बोध, [ज्ञानम्] ज्ञान अथवा [चित्तम्] चित्त उसे [यः मुनिः] जो मुनि [नित्यं धरति] नित्य धारण करता है, [तस्य] उसे [प्रायश्चित्तम् भवेत्] प्रायश्चित्त है।

टीका : यहाँ, 'शुद्ध ज्ञान के स्वीकारवाले को प्रायश्चित्त है' ऐसा कहा है।

उत्कृष्ट ऐसा जो विशिष्ट धर्म वह वास्तव में परम बोध है—ऐसा अर्थ है। बोध, ज्ञान और चित्त भिन्न पदार्थ नहीं हैं। ऐसा होने से ही उसी परमधर्मी जीव को प्रायः चित्त है अर्थात् प्रकृष्टरूप से चित्त (-ज्ञान) है। जो परमसंयमी ऐसे चित्त को नित्य धारण करता है, उसे वास्तव में निश्चय-प्रायश्चित्त है।

[भावार्थः] जीव धर्मी है और ज्ञानादिक उसके धर्म हैं। परम चित्त अथवा परम ज्ञानस्वभाव जीव का उत्कृष्ट विशेषधर्म है। इसलिए स्वभाव-अपेक्षा से जीवद्रव्य को प्रायःचित्त है अर्थात् प्रकृष्टरूप से ज्ञान है। जो परम संयमी ऐसे चित्त की (-परम ज्ञानस्वभाव की) श्रद्धा करता है तथा उसमें लीन रहता है, उसे निश्चयप्रायश्चित्त है।

गाथा - ११६ पर प्रवचन

अब ११६ (गाथा।)

उक्किट्ठो जो बोहो णाणं तस्सेव अप्पणो चित्तं।
जो धरइ मुणी णिच्चं पायच्छित्तं हवे तस्स।।११६।।

नीचे हरिगीत-

उत्कृष्ट निज अवबोध अथवा ज्ञान अथवा चित्त को।
धारे मुनि जो पालता वह नित्य प्रायश्चित्त को॥११६॥

टीका : यहाँ, 'शुद्ध ज्ञान के स्वीकारवाले को...' आहाहा! भगवान आत्मा शुद्ध ज्ञान का पिण्ड है, शुद्ध ज्ञान का सागर है। सवेरे आया था। उस शुद्ध ज्ञान के स्वीकारवाले को, इसके अतिरिक्त किसी भी चीज़ का स्वीकार जहाँ नहीं। आहाहा! अपना प्रभु, अकेला ज्ञान और आनन्द का रूप तथा उसका स्वरूप ही है। उसका स्वभाव और स्व-रूप ज्ञान और आनन्द इत्यादि गुण अन्दर इकट्ठे हैं, ऐसे '**शुद्ध ज्ञान के स्वीकारवाले को...**' अशुद्धता के राग और पर की बात तो छोड़ दी है। मात्र अन्दर शुद्ध ज्ञानस्वरूप पवित्र का जिसे स्वीकार है, वह '**प्रायश्चित्त है**'... वह धर्म है। आहाहा!

'**शुद्ध ज्ञान के स्वीकारवाले को...**' ज्ञानमूर्ति प्रभु शुद्ध है, पवित्र है, अनाकुल आनन्द का रसकन्द है। ऐसे शुद्ध ज्ञान और आनन्दवाले सहित का जिसे अन्तर में स्वीकार है। आहाहा! बस! वह प्रायश्चित्त है। यह पूरे संसार में उसने प्रायश्चित्त किया। अल्प ज्ञान को भी आदरना नहीं, राग को नहीं, पर को नहीं, राग को नहीं, अल्प ज्ञान भी नहीं। आहाहा! इस नियमसार कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं, मैंने मेरे लिये बनाया है। मेरी भावना के लिये मैंने बनाया है। आहाहा! इसमें यह (बात) है।

शुद्ध ज्ञान चैतन्यमूर्ति अन्दर पुण्य और पाप के विकल्प के राग से रहित, अल्पज्ञपना भी जहाँ नहीं, जहाँ पूर्ण सर्वज्ञस्वरूपी है... आहाहा! शुद्ध ज्ञान का स्वीकार। वह स्वयं सर्वज्ञस्वभाव ही है। आहाहा! उसके '**शुद्ध ज्ञान के स्वीकारवाले को प्रायश्चित्त है**' **ऐसा...** शास्त्र में भगवान ने **कहा है।** आहाहा! बाहर से करे, हाथ जोड़े, ऐसा करे, वैसा

करे, वे सब बातें अनन्त बार की है। अन्तर में शुद्ध चैतन्य की पूर्णता, शुद्ध चैतन्य का दल, उसका स्वीकार। पर्याय का भी नहीं, राग का तो नहीं। संयोगी निमित्त परचीज़ का तो नहीं। आहाहा! देव-गुरु-शास्त्र का भी जहाँ स्वीकार नहीं। उनके प्रति की भक्ति के राग का भी जहाँ स्वीकार नहीं। उस भक्ति के राग को जाननेवाली वर्तमान पर्याय का भी जहाँ स्वीकार नहीं। आहाहा! देवीलालजी! ऐसी बातें हैं, बापू! दुनिया से अलग है। आहाहा!

अकेला त्रिकाली शुद्धस्वरूप, ध्रुव शुद्धस्वरूप, नित्य शुद्धस्वरूप का स्वीकार (हुआ), वह पर्याय। उसका स्वीकार, वह पर्याय है परन्तु पर्याय का स्वीकार पर्याय, ऐसा नहीं। आहाहा! भाषा तो सादी है परन्तु अब भाव तो... आचार्य महाराज कहते हैं कि मैंने तो मेरी भावना के लिये बनाया है। अब यह तो सबको सुनने को मिला, सुनो! आहाहा! '**शुद्ध ज्ञान के स्वीकारवाले को...**' पढ़ा हुआ और जाना हुआ यह डॉक्टर का, वकालात का, व्यापार का, वह ज्ञान नहीं; वह तो सब कुज्ञान है। आहाहा! उसका भी जहाँ स्वीकार नहीं। बड़ी पदवी मिले, दस हजार, बीस हजार की पदवी मिले, उतना पढ़ा हो, वह भी कोई शुद्ध ज्ञान नहीं है। वह सब अशुद्ध और मलिन है। आहाहा!

त्रिकाली आत्मा शुद्धस्वरूपी पर्याय से भी पार, ऐसा जो त्रिकाली स्वभाव है, उसका स्वीकार, उसका सत्कार, उसका आदर वह उपादेय, वह प्रायश्चित्त है। आहाहा! सब पाप का छेद करनेवाला यह है। पुण्य और पाप का छेद करनेवाला शुद्ध ज्ञान स्वभाव का स्वीकार, वह पुण्य और पाप का छेद करनेवाला है। आहाहा! ऐसी बात है। जगत को कठिन पड़ती है। दया पालना, व्रत पालना, ऐसा तो आता नहीं। भाई! वह तो सब विकल्प है, बापू! वह वस्तु नहीं।

यह तो चैतन्यमूर्ति शुद्ध ज्ञान का स्वभाव पूर्णानन्द का नाथ प्रभु, जिसमें देह रहित, वाणी रहित, पुण्य-पाप के विकल्प से रहित और जिसमें अल्पज्ञपना भी नहीं। उस अल्पज्ञपने में त्रिकाल का स्वीकार। अल्पज्ञ में अल्पज्ञ का भी स्वीकार नहीं। आहाहा! ऐसा जो भगवान आत्मा सच्चिदानन्द प्रभु... स्वीकार करना, वह तो पर्याय है परन्तु किसका स्वीकार? कि त्रिकाली चीज़ का। आहाहा! वह त्रिकाली चीज़ शुद्ध है। उसका स्वीकार, वह पर्याय है, अवस्था है, वह प्रायश्चित्त है, वह संसार के छेद का कारण है। आहाहा!

यहाँ तो जरा पाप लगा, फिर प्रायश्चित्त दो। दो अपवास करना, तीन अपवास

करना, हो गया प्रायश्चित्त। वहाँ धूल में भी प्रायश्चित्त नहीं है। आहाहा! प्रायश्चित्त, बापू! प्रायः, इसका अर्थ अभी करेंगे। देखो! **उत्कृष्ट ऐसा जो विशिष्ट धर्म, वह वास्तव में परम बोध है...** आहाहा! उत्कृष्ट ऐसा जो विशिष्ट धर्म, वह वास्तव में परम बोध है। अन्दर पूर्ण ज्ञान, पूर्ण स्वरूप की प्रतीति का अनुभव, उसका स्वीकार, वही बोध है। वह परम बोध है। शास्त्र का साधारण जानना, वह कहीं परम बोध नहीं है। आहाहा! संसार की कला को लाख कला को जाने। शास्त्र में बहत्तर कला आती है न? राजकुमार बहत्तर कला सीखते हैं, वह कोई चीज़ नहीं है, वह तो संसार है। वह है (परन्तु) संसार है। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, उत्कृष्ट त्रिकाली जो भगवान आत्मा अनादि-अनन्त सत्रूप रहनेवाला, जिसे कोई राग की अपेक्षा भी नहीं, ऐसा जो प्रभु... आहाहा! **उत्कृष्ट ऐसा जो विशिष्ट...** खास धर्म। उत्कृष्ट ऐसा खास धर्म... आहाहा! **वह वास्तव में परम बोध है...** उसका नाम परम बोध है। ज्ञान की पूर्ण शक्ति, पूर्ण स्वभाव, उसकी जो प्रतीति और अनुभव, वह परम बोध है। उसे उत्कृष्ट ज्ञान हुआ है। दूसरे सब पठनवालों को ज्ञान हुआ हो या शास्त्र का पठन ग्यारह अंग, वह ज्ञान, ज्ञान नहीं है। आहाहा! **ऐसा अर्थ है।** है?

उत्कृष्ट ऐसा जो विशिष्ट धर्म... ज्ञान धर्म, चैतन्यमूर्ति। ऐसा जो आत्मा का त्रिकाली स्वभाव, **वह वास्तव में परम बोध है...** उसका ज्ञान, वही ज्ञान है। बाकी दूसरी चीज़ का ज्ञान, वह ज्ञान है ही नहीं। आहाहा! लोक में चतुर बहुत होते हैं न? यह डॉक्टर, वकील, दूसरे भी अनेक प्रकार के यह फोड़े की पट्टी बाँधने के, काटने के, काटकर ऐसा करने के बहुत प्रकार के होते हैं न? आहाहा! कपड़े के व्यापारी होशियार होते हैं। वहाँ अफ्रीका में गये थे न? नैरोबी। बीस-बीस लाख का कपड़ा। एक दुकान में... क्या कहलाता है लकड़ी का घोड़ा? लकड़ी का घोड़ा होता है न? इस ओर, इस ओर तथा इस ओर। चारों ओर बीस-बीस, पच्चीस-पच्चीस लाख का कपड़ा। एक-एक को ऐसी बड़ी दुकानें। अपने मुमुक्षु बड़े व्यापारी हैं। करोड़पति हैं। आठ व्यक्ति तो करोड़पति हैं। जिस मकान में उतरे थे, वह मकान पन्द्रह लाख का था। मकान ही पन्द्रह लाख का, परन्तु उसमें अटक जाय सब। आहाहा! अपने को पैसा मिला, अपन पैसेवाले। पैसा तो जड़ है, धूल है। उसका ज्ञान, वह भी ज्ञान नहीं। आहाहा! शरीर का ज्ञान, वाणी का ज्ञान, अरे! शास्त्र का ज्ञान, वह ज्ञान नहीं। आहाहा!

तब ज्ञान किसे कहना? आहाहा! **उत्कृष्ट ऐसा जो विशिष्ट धर्म...** आत्मा का। आत्मा का जो खास स्वभाव धर्म... आहाहा! वह **परम बोध है...** उसका नाम परम ज्ञान है। आहाहा! वह ज्ञान प्रायश्चित्त है, वह ज्ञान पाप और पुण्य को छेद डालता है। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : स्वसन्मुख का ज्ञान...

पूज्य गुरुदेवश्री : स्व का आदर हुआ। अकेला स्व का ही आदर है। परम बोध, शुद्ध चैतन्यस्वरूप का आदर, वह परम बोध है। बाकी दूसरे सब शास्त्र का जानपना और दूसरे लौकिक का जानपना, बड़े वकील पाँच-पाँच हजार लेते हों न... आहाहा! वह सब बोध नहीं है, वह ज्ञान नहीं है। वह तो सब कुज्ञान है। आहाहा!

परम बोध तो उसे कहते हैं। उत्कृष्ट और विशिष्ट अर्थात् खास। अपना जो धर्म ज्ञान, उसका ज्ञान वह परम बोध है। अपनी सत्ता, चैतन्य सत्ता पूर्ण है। अपूर्ण नहीं, विकृत नहीं, ऐसा पूर्ण परमात्मा स्वयं, ऐसा जो ज्ञानस्वभाव पूरा, उसका ज्ञान, उसे परम बोध कहा जाता है। उसके ज्ञान को बोध ज्ञान कहा जाता है। बाकी दूसरे तुम्हारे बड़े-बड़े कपड़े के व्यापारी, लाखों के कपड़े हों, वह कहीं होशियार नहीं कहलाते। आहाहा! वहाँ नैरोबी में ऐसी बड़ी दुकान है, हों! बीस-बीस लाख के कपड़े। बड़ी दुकान गहरे-गहरे। आहाहा! और हर दिन की आमदनी भी सही। एक तो हमारे जेठाभाई न? कोई ऐसा कहता था कि जेठाभाई ने नब्बे लाख का व्यापार किया, नब्बे लाख पैदा हुए।

मुमुक्षु : आप मकान में उतरे तो होंगे ही न!

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल मकान... आवे कुछ। नब्बे लाख का व्यापार। कोई कहता था। वे बैठे थे। इन्हें नब्बे लाख की आमदनी हुई है। नब्बे लाख की इन्हें आमदनी हुई है। परन्तु अब यह वहाँ कुछ नहीं। वापस विरोध करे न? श्वेताम्बर लोगों के लोगों को बुलाये नहीं। फिर मुझे एकान्त में कहा कि मेरे पास एक करोड़ की तो जमीन है और पाँच करोड़ दूसरे हैं। ऐसी एकान्त में बात की। बात बाहर प्रसिद्ध करे तो दूसरों को ईर्ष्या हो और द्वेष करे। नब्बे लाख का धन्धा। डबल। जितनी कीमत का माल आया था, उससे डबल कीमत उसमें से उपजी है। कोई कपड़ा-बपड़ा होगा। पच्चीस रुपये का एक तो वह पचास में ले गये। परन्तु यह ज्ञान कुज्ञान है। आहाहा!

मुमुक्षु : अनाज के दाने तो आवे।

पूज्य गुरुदेवश्री : दाने उससे नहीं आते। दाने, दाने के कारण से आते हैं। पैसे के कारण से दाने नहीं आते। यह कठिन बात है, भाई! दाने भी तत्त्व हैं या नहीं? अस्ति है न? तो सत् है, वस्तु है, उसमें उत्पादव्ययध्रुवशक्ति है या नहीं? उत्पादव्ययध्रुवशक्ति होवे तो उसकी उत्पत्ति जहाँ जाना हो, उसकी उत्पत्ति उससे होती है। दूसरा कहे, मेरे लिये यह दाना आया और अमुक आया, वह सब मिथ्यात्व भ्रम है। आहाहा! इसी तरह कपड़ा। कपड़े में भी उत्पाद-व्यय-ध्रुव है या नहीं उसमें? अस्ति है या नहीं? या नास्ति है? है, तो वह सत् है। सत् है तो वह उत्पादव्ययध्रुवयुक्तं सत् है। वह सत् है। नयी पर्याय उत्पन्न हो, पुरानी पर्याय नाश हो, सदृशपना कायम रहे, वह तो उसका स्वभाव है। वह कहीं दूसरे के कारण से वहाँ उत्पन्न होता है और दूसरे के लिये वहाँ उत्पन्न होकर आवे, वह वस्तु नहीं है। आहाहा! कठिन काम है, भाई! बात सुनना मुश्किल पड़े, ऐसा हो गया है। आहाहा! यह श्लोक बहुत अच्छा है।

उत्कृष्ट ऐसा जो विशिष्ट धर्म... खास धर्म तो यह ज्ञान। धर्मी आत्मा का खास धर्म ज्ञान-स्वरूप। वह वास्तव में परम बोध है। उसका ज्ञान, वह ज्ञान है। बाकी सब अंकरहित शून्य है। बड़े पढ़-पढ़कर बड़े पुंछड़े (डिग्रीयाँ) लगाये हों। आहाहा! क्या यह बहुत विद्या में आता है न? उद्योग का सीखते हैं, अमुक सीखते हैं, अमुक कला में सीखते हैं, ऐसा कुछ नाम आता है। तुम्हारे क्या? बी.एस. का था? बी.एस. में था। और बी.एस. में ऐसा है, अमुक में ऐसा है। उसमें उद्योग का अन्दर आता है और अमुक आता है। आहाहा! वह सब कचरा है। आहाहा!

मुमुक्षु : उसे डिग्री-उपाधि कहते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : उपाधि ही है। बड़े एल.एल.बी. और एम.ए. की उपाधि है। यह भगवान आत्मा... आहाहा!

पहली तो ऐसी बात की थी कि शुद्ध ज्ञान का स्वीकार, वह प्रायश्चित्त। अब उसे स्पष्ट करते हैं कि यह शुद्ध ज्ञान अर्थात् क्या? कि जो उत्कृष्ट ऐसा जो खास आत्मा का ज्ञान स्वभाव। आत्मा और आत्मा का ज्ञान त्रिकाली स्वभाव। आत्मा जैसे त्रिकाली है, वैसे उसका ज्ञान त्रिकाली है। आहाहा! ऐसे धर्म का स्वीकार, वह वास्तव में परम बोध है।

उसका ज्ञान वह ज्ञान है, बाकी व्यर्थ है। दुनिया का चतुर, दुनिया की सब बड़ी-बड़ी बातें करे, कपड़े का ऐसा होता है, अमुक का ऐसा होता है, मिल करो तो ऐसा होता है, मशीन ऊपर करो तो ऐसा होता है, कारखाने करो तो ऐसा होता है, यह सब ज्ञान कुज्ञान है। आहाहा!

उत्कृष्ट... दो बोल लिये। पहले तो यह लिया कि '**शुद्ध ज्ञान के स्वीकारवाले को प्रायश्चित्त है**'... शुद्ध ज्ञान त्रिकाली का स्वीकार, उसका नाम प्रायश्चित्त। अर्थात् धर्म, अर्थात् मोक्ष का मार्ग। अब कहते हैं कि यह क्या? कि **उत्कृष्ट ऐसा जो विशिष्ट..** आत्मा का उत्कृष्ट ऐसा खास धर्म, ज्ञान-आनन्द। यहाँ तो ज्ञान को लेना है। ऐसा जो आत्मा का त्रिकाली ज्ञानस्वभाव। जैसे आत्मा त्रिकाल है, ऐसा उसका ज्ञानस्वभाव त्रिकाल है, ऐसा जो धर्म वह वास्तव में उसका ज्ञान, वही वास्तविक परम ज्ञान है। आहाहा! यह आत्मा का ज्ञान, वही परम ज्ञान है, ऐसा कहते हैं। बाकी व्यर्थ है।

मुमुक्षु : व्यर्थ, ऐसा लिखा नहीं है।

पूज्य गुरुदेवश्री : व्यर्थ नहीं लिखा, बड़ा शून्य लिखा है। आहाहा!

आहाहा! देह में चैतन्यमूर्ति प्रभु उत्कृष्ट और विशिष्ट - खास। ऐसा जो धर्म - ज्ञान, उसका जो ज्ञान **वह वास्तव में परम बोध है—ऐसा अर्थ है।** आहाहा! वह चैतन्यमूर्ति है। चैतन्यस्वभाव है। वह शक्तिरूप से भी त्रिकाल को जाने, ऐसा उसका स्वभाव है। ऐसा त्रिकाल को जाने, ऐसा स्वभाव शक्तिरूप से है, उसका पर्याय में स्वीकार करना और उसका ज्ञान करना, उसका नाम परम बोध और परम ज्ञान कहने में आता है। आहाहा! बाकी ऐसे एल.एल.बी. हो और एम.ए. हो, वह सब डिग्रियाँ कुज्ञान की है। कुज्ञान की उपाधियाँ हैं। कोई वकील अपनी बुद्धि से एक दिन के पाँच हजार लेता हो तो वह बुद्धि नहीं, वह कुबुद्धि है। आहाहा! ऐसी बात है। कहो, हीरालालजी! आहाहा! कपड़ा ऐसा होता है, बीस-पच्चीस लाख का कपड़ा (होता है और) दुकान में बैठा हो। ऐसा ग्राहक आवे, वहाँ दुगने की आमदनी हो, ऐसा भी वहाँ आता है। दुगनी आमदनी। कहा न, एक दिन माल आया तो नब्बे लाख की आमदनी हुई। वह आया था उससे दुगना। ऐसे भी वहाँ नैरोबी में व्यापार हैं। आहाहा! परन्तु उसमें क्या? वह कहीं ज्ञान है? वह कहीं बोध है? वह कहीं आत्मा के हित का ज्ञान है? आहाहा!

आत्मा के हित का ज्ञान तो प्रभु! उत्कृष्ट जो चैतन्य खास जिसका धर्म है, खास जिसका स्वभाव है... आहाहा! चेतन का चैतन्यस्वभाव, उसका ज्ञान। आहाहा! चेतनद्रव्य, उसका चैतन्य गुण, उसका ज्ञान, वह परम बोध है। द्रव्य, गुण और पर्याय तीनों आ गये। चेतन उत्कृष्टभूत कहा न? उत्कृष्ट, वह चेतन। आहाहा! उसमें विशिष्ट - खास अर्थात् चैतन्यस्वभाव। वास्तव में उसका ज्ञान, वह परम बोध है। आहाहा! द्रव्य, गुण और पर्याय तीनों आ गये। द्रव्य त्रिकाली प्रभु, उसका ज्ञान भी त्रिकाली, परम बोध उत्कृष्ट, उसका ज्ञान, वह परम बोध है। उसका ज्ञान इसलिए उसे परम बोध कहने में आता है। दूसरा ज्ञान कम-ज्यादा हो, उसके साथ कुछ सम्बन्ध नहीं है। आहाहा! भगवान आत्मा ज्ञानस्वभाव से परिपूर्ण भरपूर है, उसका जिसे ज्ञान (हुआ)। ज्ञानी आत्मा का खास धर्म ज्ञान, खास धर्म, उसका जिसे ज्ञान (हुआ), वह परम बोध है। आहाहा! पूरा सब उड़ा दिया। दुनिया की यह बात, चतुराई... आहाहा!

मुमुक्षु : .....सब उड़ा दिया।

पूज्य गुरुदेवश्री : आहाहा! यहाँ कहाँ कमी है? कहते हैं कि यहाँ कहाँ कमी है, वह दूसरे के ज्ञान से तुझे ज्ञान कहना? आहाहा! यह कहाँ अधूरा है कि दूसरे के ज्ञान से तुझे ज्ञान कहना? आहाहा! उत्कृष्ट कहा न!

पहले कहा '**शुद्ध ज्ञान के स्वीकारवाले को प्रायश्चित्त है**'... आहाहा! अब उसकी व्याख्या की है कि शुद्ध ज्ञान **उत्कृष्ट ऐसा जो विशिष्ट...** धर्म है। आहाहा! उत्कृष्ट ऐसा आत्मा का स्वभाव है। चेतन आत्मा, उत्कृष्ट चैतन्य का ज्ञान उसका स्वभाव है। आहाहा! उसे वास्तव में... उसे जिसने जाना है, उसे वास्तव में परम बोध, परम ज्ञान, सच्चा ज्ञान, सत्य ज्ञान, उसे कहा जाता है। आहाहा! अभी तो जहाँ हो वहाँ बाड़ा में बातें (यह करे कि) व्रत करो, अपवास करो, भक्ति करो, पूजा करो, हो गया, मरकर जाओ फिर भटकने। आहाहा!

यह भगवान आत्मा अन्दर... अन्दर सब भगवान है, हों! देह में विराजमान प्रभु है। कहते हैं, उस चेतन का जो चैतन्य उत्कृष्ट बोध-खास धर्म उसका। चेतन का खास धर्म ज्ञान है। सबकी अपेक्षा (खास धर्म)। आहाहा! चेतनस्वरूप भगवान... परन्तु कभी सुना न हो, वह और चेतन कैसा होगा और कहाँ होगा? इन सबको जो जानता है, वह

जाननेवाली चीज़ से भिन्न है। दूसरे सबको जो जानता है, वह जाननहार की सत्ता दूसरे सबसे भिन्न है। अरे! राग को जानता है तो राग की सत्ता से भगवान भिन्न है। दया, दान के राग को भी जाननेवाला ज्ञान है। वह ज्ञान भी राग से भिन्न है; इसलिए यहाँ उत्कृष्ट—विशिष्ट—खास धर्म... आहाहा! कहा न?

उत्कृष्ट ऐसा जो विशिष्ट धर्म... ज्ञान। उसका ज्ञान, वह वास्तव में परम बोध है। आहाहा! बात ऐसी है, भाई! बात तो बहुत अच्छी आयी है परन्तु इसे रुचि में लेना चाहिए। आहाहा! पोषाण, पोषाण। पोसाने का, बनिये को पोसावे ऐसा माल लेता होगा न? बनिये को पोसावे, ऐसा माल ले न! ढाई रुपये का मण है और यहाँ सवा दो उपजे, वह माल लेगा? ढाई रुपये का मण और तीन उपजते हों तो माल लेगा। इसी प्रकार यह पोसाता है। इसमें लाभ मानता हो तो इसे माने कि इसमें लाभ है। दया, दान, व्रत और राग तथा पुण्य में लाभ नहीं, वह तो नुकसान है। संसार है, राग है, विकार है। आहाहा!

अपना **विशिष्ट धर्म वह वास्तव में परम बोध है—ऐसा अर्थ है। बोध, ज्ञान और चित्त भिन्न पदार्थ नहीं हैं।** देखा? बोध कहो, ज्ञान कहो या चित्त कहो। चित्त अर्थात् वह मन नहीं। चित्त अर्थात् ज्ञान। आत्मा के अन्तरस्वभाव को - त्रिकाली को बोध कहो, ज्ञान कहो, चित्त कहो। आहाहा! वे तीनों को अलग पदार्थ नहीं हैं। एक के तीन नाम हैं। ज्ञानस्वरूपी भगवान त्रिकाली ध्रुव, यह उसके तीन नाम हैं। वस्तु तीन नहीं। उसके तीन नाम हैं। आहाहा! ऐसा उपदेश है। किस प्रकार का ऐसा उपदेश? इसमें क्या करना, यह तो कुछ सूझता नहीं। करना क्या? यह करना नहीं है? उत्कृष्ट परम धर्म आत्मज्ञान की प्रतीति और उसके सन्मुख होकर उसका ज्ञान (करना), वह चित्त है। आहाहा!

ऐसा होने से ही... बोध, ज्ञान और चित्त भिन्न पदार्थ नहीं हैं। ऐसा होने से ही उसी परमधर्मी जीव को... आहाहा! उस परमधर्मी जीव को—जिसने आत्मा का बोध किया, ज्ञान का ज्ञान किया। ज्ञान जो आत्मा का त्रिकाली स्वभाव, उसका जिसने ज्ञान किया, ऐसा जो धर्मी। परमधर्मी। आहाहा! ऐसे जीव को **प्रायः चित्त है...** उसके पाप छिद जाते हैं। जिसने अन्दर आत्मा का उत्कृष्ट बोध किया... आहाहा! उसकी पर्याय में जहाँ अन्दर आनन्द का उछाल आया, वहाँ रागादि का नाश हो जाता है, प्रायश्चित्त हो जाता है। आहाहा! ऐसी बात है। प्रवीणभाई! कहीं मिले ऐसी नहीं है। आहाहा! कठिन लगे ऐसी

है। यह क्या कहते हैं परन्तु ऐसा यह ? यह सब करना-फरना होता है। पूरे दिन मन्दिर करना, पूजा करना, भक्ति करना, लाखों-करोड़ों रुपये खर्च करना। चाहे जो खर्च करे न, कहा न ? नैरोबी में अभी कहा न ? यह पौष महीने में नैरोबी-अफ्रीका गये थे न ? साठ लाख इकट्ठे किये। साठ लाख। पन्द्रह लाख तो पहले मन्दिर के लिये होंगे और पैंतालीस लाख मैं था और इकट्ठे हुए, छब्बीस दिन में पैंतालीस लाख का चन्दा। बड़ा करोड़ोंपति। अच्छी बात, बापू! तेरे करोड़ों खर्च कर डाल न! संगमरमर की हजारों पेटियाँ आयी थीं। भगवान की वेदी प्रतिष्ठा हो गयी। यह पत्थर बराबर आ गये। इसके अतिरिक्त... वह क्या कहलाता है ? स्तम्भ और वह सब बहुत बाकी है तो हजारों-सैकड़ों क्या कहलाता है वह ? पेटियाँ। लकड़ी की पेटियाँ पड़ी थीं परन्तु सबको ऐसा कि बापू! यह बात है, वह है। यह होता है, उसके कारण से। उसमें इसका भाव हो तो शुभ है। उसे शुभ का ज्ञान, वह ज्ञान नहीं है। आहाहा! यह ज्ञान उत्कृष्ट आत्मा का ज्ञान, उसका ज्ञान... आहाहा! यह शुभ को जाने, वह ज्ञान वहाँ अटका हुआ है। आहाहा! शुभराग तो धर्म नहीं, शुभराग तो धर्म नहीं परन्तु शुभ को जाने, वह ज्ञान नहीं। ज्ञान अन्दर त्रिकाली चैतन्यस्वरूप, उसे जाने। आहाहा!

ऐसा होने से ही उसी परमधर्मी जीव को प्रायः चित्त है अर्थात् प्रकृष्टरूप से चित्त (-ज्ञान) है। लो, प्रकृष्टरूप से अर्थात् उसे ज्ञान है। उसे पर्याय में ज्ञान खिला, वह ज्ञान है। पर का ज्ञान, वह ज्ञान नहीं है। आहाहा! **परमसंयमी ऐसे चित्त को नित्य धारण करता है,...** जो सच्चा संयमी मुनि है, वह नित्य ऐसे ज्ञान को धारण करता है। आहाहा! वह पंच महाव्रत के विकल्प आते हैं, उन्हें धारण नहीं करता। आहाहा! **परमसंयमी ऐसे चित्त को...** अर्थात् ज्ञान को। **नित्य धारण करता है,...** नित्य धारण करता है। एक समय भी उसका अन्तर नहीं है। किसी समय महाव्रत पाले और किसी समय आत्मा का ज्ञान (करे, ऐसा नहीं) आहाहा! **नित्य धारण करता है, उसे वास्तव में निश्चय-प्रायश्चित्त है।** लो! उसे वास्तव में संसार का छेद है। उसे संसार नहीं रहता। उसे आत्मा...

विशेष कहेंगे... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)